ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय ।

अथ संस्कारविधिं वक्ष्यामः

ओं सृह नाववतु । सृह नौ भुनक्तु । सृह वीर्य्यं करवावहै । तेजुस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

-तैत्तिरीय आरण्यके, अष्टमप्रपाठके, प्रथमानुवाके

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः । भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ॥१॥ गर्भाद्या मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि । वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम् ॥२॥ वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात् । आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥३॥ संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते । असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ॥४॥ अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः। शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः ॥५॥ कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः वेदविज्ञानविरहै: स्वार्थिभि: परिमोहितै: ॥६॥ प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः । जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ॥७॥ बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ् मानवप्रियकारकैः । प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजित: ॥८॥ दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः, सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया । इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽ-स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः ॥९॥ चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्त्तिकस्यान्तिमे दले। अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥१०॥

विन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले । त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम् ॥११॥

सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाके करे। और सब लोग उस में ध्यान लगाकर सुनें और विचारें—

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्<u>दुरि</u>ता<u>नि</u> परा सुव ।

यद् भृद्रं तन्नुऽआ सुंव ॥१॥ –यजुः अ० ३०। मं० ३॥ अर्थ-हे (सिवतः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा सुव) दूर कर दीजिये। (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, (तत्) वह सब हम को (आ सुव) प्राप्त कीजिए।।१।।

हिर्ण्यगर्भः समेवर्त्तताग्रे भृतस्ये जातः पतिरेकं आसीत् । स दोधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवायं हविषां विधेम ॥२॥

-यजुः अ० १३ । मं० ४॥

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भ:) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य—चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जात:) प्रसिद्ध (पित:) स्वामी (एक:) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था, (स:) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है। हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भिक्त किया करें।।२।।

यऽ आत्मदा बेलदा यस्य विश्वंऽ उपासंते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायाऽमृतं यस्यं मृत्युः कस्मै देवायं ह्विषां विधेम ॥३॥

-यजुः अ० २५। मं० १३॥

अर्थ-(य:) जो (आत्मदा:) आत्मज्ञान का दाता, (बलदा:)

शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, (यस्य) जिस की (विश्वे) सब (देवा:) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं, और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष, सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्षसुखदायक है, (यस्य) जिस का न मानना अर्थात् भिक्त न करना ही (मृत्यु:) मृत्यु आदि दु:ख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हिवषा) आत्मा और अन्त:करण से (विधेम) भिक्त अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ।।३।।

यः प्राणितो निमिषतो म<u>िह</u>त्वैक्ऽ इद्राजा जगेतो बभूवे । यऽईशेऽ अस्य द्विपद्श्चतुष्पदः कस्मै देवार्य ह्विषा विधेम ॥४॥

-यजुः अ० २३। मं० ३

अर्थ—(य:) जो (प्राणत:) प्राणवाले और (निमषत:) अप्राणिरूप (जगत:) जगत् का (मिहत्वा) अपने अनन्त मिहमा से (एक: इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (य:) जो (अस्य) इस (द्विपद:) मनुष्यादि और (चतुष्पद:) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलेश्वर्य के देनेहारे परमात्मा के लिये (हिवषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भिक्त करें ।।४।।

येन द्यौरुग्रा पृ<u>ष्</u>थिवी च दृढा येन स्वः स्त<u>भि</u>तं येन नार्कः । योऽअन्तरिक्षे रजसो <u>वि</u>मानः कस्मै देवाय हृविषा विधेम ॥५॥

-यजुः अ० ३२। मं० ६॥

अर्थ – (येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौ:) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्व:) सुख को (स्तिभितम्) धारण, और (येन) जिस ईश्वर ने (नाक:) दु:खरिहत मोक्ष को धारण किया है, (य:) जो (अन्तिरिक्षे) आकाश में (रजस:) सब लोकलोकान्तरों को (विमान:) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हिवषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भिक्त करें ।।५।।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वां जातानि परि ता बंभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम् पतयो रयीणाम् ॥६॥ –ऋ० म० १०। स० १२१। म० १०॥ अर्थ-हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपिर हैं। (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, (तत्) उस-उस की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे। जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें।।६।।

सं नो बन्धुर्ज<u>िन</u>ता स विधाता धार्मानि वेद भुवना<u>नि</u> विश्वा। यत्रं देवाऽ अमृतमान<u>शा</u>नास्तृतीये धार्मन्नध्यैरयन्त् ॥७॥

–यजु० अ० ३२। मं० १०॥

अर्थ-हे मनुष्यो! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जिनता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करनेहारा, (विश्वा) सम्पूर्ण (भ्रुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है। और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुखदुःख से रहित, नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप, धारण करनेहारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु आचार्य राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिलके सदा उस की भिक्त किया करें।।७।।

अग्ने नयं सुपर्था रायेऽ अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्युस्मञ्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नर्मऽउक्ति विधेम ॥८॥

-यजुः अ० ४०। मं० १६

अर्थ — हे (अग्ने) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे, (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिस से (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये। और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमः उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें, और सर्वदा आनन्द में रहें।।८।।

॥ इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

स्विस्तिवाचनम् ७

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्न्धातमम् ॥१॥ स नः पितेवं सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।

सर्चस्ता नः स्वस्तये ॥२॥ —ऋ०म० १। सू० १। मं० १, ९। स्विस्त नो मिमीतामृश्विना भगेः स्विस्त देव्यदितिरन्विणेः । स्विस्त पूषा असुरो दधातु नः स्विस्त द्यावापृश्विवी सुचेतुना ॥३॥ स्वस्तये वायुमुपं ब्रवामहै सोमं स्विस्त भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तयं आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वान्रो वसुरिग्नः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्विस्त नो रुद्रः पात्वंहंसः॥५॥ स्विस्त मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवित । स्विस्त न इन्द्रंश्चाग्निश्चं स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥ स्वस्ति पन्थामनुं चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताष्ट्रता जानृता सं गमेमिहि ॥७॥ —ऋ० मं० ५। सू० ५१।११-१५॥

ये देवानां यज्ञियां यज्ञियांनां मनोर्यजंत्रा अमृतां ऋत्ज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्ति<u>भिः</u> सदा नः ॥८॥ –ऋ० मं० ७। सू० ३५।६५॥

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पर्यः पीयूषं द्यौरिदितिरिद्रिबर्हाः । उक्थश्रीष्मान् वृषभ्रान्त्स्वप्नस्ताँ अित्त्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥९॥ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृत्त्वमानशुः । ज्योतीर्रथा अर्हिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥ सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दिधरे दिवि क्षयम् । ताँ आ विवास नर्मसा सुवृक्तिभिर्महो अित्त्याँ अदितिं स्वस्तये ॥११॥ को वः स्तोमं राधित यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यित छन्। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं कर्द्यो नः पर्षुदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामयिजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभेयुं शर्म यच्छत सुगा नेः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥ य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नेः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥ भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्नि मित्रं वर्रुणं सातये भगं द्यावीपृथिवी मुरुतः स्वस्तये ॥१५॥ स्त्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहर्स सुशर्मीण्मदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नार्वं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥ विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहृत:। सत्यया वो देवहत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥ अपामीवामप विश्वामनोहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरु णः शर्मं यच्छता स्वस्तये ॥१८॥ अरिष्टः स मर्त्तो विश्वं एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमदित्यासो नर्यथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तर्ये ॥१९॥ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥ स्वस्ति नः पथ्यास् धन्वसु स्वस्त्यश्प्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥ स्वस्तिरिद्धि प्रपेथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥ -ऋ० मं० १०। सू० ६३॥ [मं० ३-१६]

ड्रषे त्वोर्जे त्वां वायवं स्थ देवो वः सिवता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण्ड आप्यायध्वमघ्याड इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाड अयक्ष्मा मा वं स्तेनड ईशत माघशं सो ध्रुवाड अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य प्रशून् पाहि ॥२३॥ —यजु० अ०१। मं०१ आनो भद्राः क्रत्वो यन्तु विश्वतोऽदंब्धासोऽ अपरीतासऽड्रद्भिदंः। देवा नो यथा सद्मिद्ध्धेड अस्ननप्रायुवो रिक्षतारो विवेदिवे ॥२४॥ देवानां भद्रा सुमृतिर्ऋजूयतां देवानां रातिर्भि नो निवर्तताम्। देवानां सुख्यमुपसेदिमा व्यंदेवा नुऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पितं धिय<u>ञ्</u>जिन्वमवसे हूमहे व्यम् । पूषा नो यथा वेदंसामसंद्वृधे रंक्षिता पायुरदंब्धः स्वस्तये ॥२६॥ स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा <u>वि</u>श्ववेदाः । स्वस्ति नुस्ताक्ष्योऽ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहुस्पितदंधातु ॥२७॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पंश्येमाक्षभिर्यजत्राः । <u>स्थि</u>रैरङ्गैस्तुष्टुवाक्षसंस्तुनूभिर्व्यशेमिह देवहितं यदायुः ॥२८॥ —यज् अ २५। मं १४, १५, १८, १९, २१॥

अंग्नै आं यांहि वींतंथें गृणांनों हैव्यंदांतये ।
निं होताँ सित्स बहिषें ॥२९॥
त्वंमंग्ने यंज्ञांनांथं होतां विंश्वेषाथं हितः ।
देवेंभिर्मांनुषे जंने ॥३०॥ —साम० पूर्वा० प्रपा० १। मं० १, २॥
ये त्रिष्पताः परियन्ति विश्वां रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥
—अथर्व० कां० १। सू० १। मं० १॥

॥ इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिकरणम्

शं नं इन्द्राग्नी भवतामवीिभः शं न इन्द्रावर्रुणा रातहेव्या । शिमन्द्रासोमां सुविताय शं योः शं न इन्द्रांपूषणा वार्जसातौ ॥१॥ शं नो भगः शर्म नः शंसो अस्तु शं नः पुरिन्धः शर्म सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥ शं नो धाता शर्म धर्त्ता नो अस्तु शं नं उक्त्वी भवतु स्वधािभः। शं रोदंसी बृह्ती शं नो अद्धिः शं नो देवानां सुहवािन सन्तु ॥३॥ शं नो अग्निज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावृश्विना शम्। शं नः सुकृतां सुकृतािन सन्तु शं नं इष्विरो अभि वातु वातः ॥४॥ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमुन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥५॥ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमा<u>दि</u>त्ये<u>भि</u>र्वर्रणः सुशंसः। शं नौ रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥ शं नः सोमी भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शम् सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वर्रूणां <u>मि</u>तयो भवन्तु शं नः प्रस्वर्ः शम्बस्तु वेदिः ॥७॥ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नुः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नुः सिन्धवः शर्मु सुन्त्वापः ॥८॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मुरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शर्मु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्बस्तु वायुः ॥९॥ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नीः पूर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शर्मभिषाचः शर्मुरातिषाचः शंनो दिव्याः पार्थिवाः शंनो अप्याः॥११॥ शं ने: सुत्यस्य पर्तयो भवन्तु शं नो अर्वन्तुः शर्मु सन्तु गार्वः। शं ने ऋभवेः सुकृतेः सुहस्ताः शं नौ भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥ शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्यः र्थं शं समुद्रः। शं नो अपां नपति पेरुरस्तु शं नः पृष्टिनर्भवतु देवगोपा ॥१३॥ −ऋ०मं० ७। सू० ३५। मं० १-१३ इन्द्रो विश्वस्य राजित । शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

इन्द्रा विश्वस्य राजात । शनाऽअस्तु ।द्वपद् श चतुष्पद ॥१४॥ शन्नां वार्तः पवता्रथं शन्नेस्तपतु सूर्यः । शन्नः किनक्रदद्देवः पूर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥१५॥ अहां शम्भवन्तु नः शः रात्रीः प्रति धीयताम् । शन्ने इन्द्राग्नी भवतामवों भिः शन्नुऽइन्द्रावर्रुणा रातहं व्या । शन्ने इन्द्रापूषणा वार्जसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय् शं योः ॥१६॥ शन्नो देवीर्भष्टं यऽआपो भवन्तु पीत्रये । शंयोर्भिस्त्रं वन्तु नः॥१७॥ द्यौः शान्तिरन्तिरक्ष्युः शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पत्रयः शान्तिः सा मा शान्तिरिध ॥१८॥ तच्चक्षुर्देविहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम श्रारदः शृतं जीवेम श्ररदः शृतः शृणुयाम श्ररदः शृतं प्रब्नवाम श्ररदः शृतमदीनाः स्याम श्ररदः शृतं भूयेश्च श्ररदेः शृतात् ॥१९॥

–यजुः० अ० ३६। मं० ८, १०-१२, १७, २४॥

यज्जाग्रंतो दूरमुदैति दैवं तदुं सुप्तस्य तथ्रैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२०॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२१॥
यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तर्मृतं प्रजास् ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२२॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम्मृतेन सर्वम् ।
येने यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२३॥
यस्मिन्नचः साम् यर्जू्थिषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिन्चनः सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४
सुषार्थिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीश्रीभर्वाजनं इव ।
दूत्प्रतिष्ठं यदंितरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥
हत्प्रतिष्ठं यदंितरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥
–यजुः० अ० ३४। मं० १-६॥

सं नं: पवस्वे शेँ गवें शं जनाँयें शंमवंतेँ । शंथ्रं राजेन्नोंषंधीभ्यः ॥२६॥ —साम॰ उत्तरा॰ प्रपा॰ १। मं॰ ३॥ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृश्विवी उभे इमे । अभयं पृश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादध्ररादभयं नो अस्तु ॥२७॥ अभयं मित्रादभयम्मित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवां नः सर्वा आशा ममं मित्रं भवन्तु ॥२८॥ —अथर्व० कां० १९।१५।५, ६

॥ इति शान्तिकरणम् ॥^१

इस स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण की सर्वत्र जहाँ-जहाँ प्रतीक धरें, वहाँ-वहाँ करना होगा ।

अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये । परन्तु जहां-कहीं विशेष होगा, वहां सूचना कर दी जायेगी कि यहां पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना, और इतना अधिक करना, स्थान-स्थान में जना दिया जायेगा ।

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र, अर्थात् जहां स्थल वायु शुद्ध हो, किसी प्रकार का उपद्रव न हो।

यज्ञशाला—इसी को 'यज्ञमण्डप' भी कहते हैं। यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण, और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो। यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी, और जितनी गहरी वेदी बनानी हो, उतनी पृथिवी दो–दो हाथ खोद अशुद्ध मिट्टी निकालकर उस में शुद्ध मिट्टी भरें। यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे, और जो ८ आठ हाथ की हो तो १२ बारह खम्भे लगाकर उन पर छाया करें।

वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० दश हाथ ऊंची अवश्य होवे । और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ चार द्वार रखें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बांधें । नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हल्दी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें । मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें । इसीलिए निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें ।

यज्ञकुण्ड का परिमाण

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार-चार हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे, अर्थात् तले में १ एक हाथ चौकोण लम्बा-चौड़ा रहे । इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों, उतना ही गहिरा-चौड़ा कुण्ड बनाना, परन्तु अधिक आहुतियों में दो-दो हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छह हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना । और जो पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे । अर्थात् तीन हाथ गहिरा-चौड़ा सम चौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हजार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा-गिहरा सम चौरस और आध हाथ नीचे। दश हजार आहुित तक इतना ही, अर्थात् दो हाथ चौड़ा-गिहरा सम चौरस और आध हाथ नीचे रखना। पांच हजार आहुित तक डेढ़ हाथ चौड़ा-गिहरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे। यह कुण्ड का पिरमाण विशेष घृताहुित का है। यदि इसमें २५०० (ढाई हजार) आहुित मोहनभोग, खीर और २५०० (ढाई हजार) घृत की देवें तो दो ही हाथ का चौड़ा-गिहरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रखें।

चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा-गिहरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावें। और इन कुण्डों में १५ पन्द्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पांच-पांच अंगुल की ऊंची ३ तीन बनावें। और ये ३ तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी। प्रथम ५ पांच अंगुल ऊंची और ५ पांच अंगुल चौड़ी, इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें।

यज्ञसमिधा

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी-बड़ी कटवा लेवें, परन्तु ये समिधा कीड़ा लगीं, मिलन-देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों। अच्छे प्रकार देख लेवें। और चारों ओर बराबर और बीच में चुनें।

होम के द्रव्य चार प्रकार

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि। (तीसरे—पिष्ट) शक्कर, सहत, छुवारे, दाख आदि। (चौथे—रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ।

स्थालीपाक

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें । इस का प्रमाण—

ओं देवस्त्वा सविता पुनात्विच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभ: ॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये, अर्थात् सब को यथावत् शोध-छान, देख-भाल, सुधार कर करें । इन द्रव्यों को यथायोग्य मिलाके पाक करना । जैसे कि सेर घी के मोहनभोग में रत्तीभर कस्तूरी, मासेभर केशर, दो मासे जायफल-जावित्री, सेरभर मीठा, सब डालकर मोहनभोग बनाना । इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खिचडी़, मोदक आदि होम के लिये बनावें ।

चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि-

'ओम् अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' अर्थात् जितनी आहुति देनी हों, प्रत्येक आहुति के लिये चार-चार मूठी चावल आदि ले के (ओम् अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवें। जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो, तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकालके यथावत् सुरक्षित रखें, और उस पर घृत सेचन करें।

यज्ञपात्र

विशेषकर **चांदी, सोना अथवा काष्ठ** के पात्र होने चाहियें। निम्नलिखित प्रमाणे—

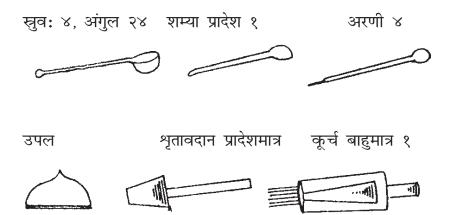
अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः, षडङ्गुलखातास्त्विग्बला हंसमुख-प्रसेकाः, मूलदण्डाश्चतस्त्रः स्त्रुचो भवन्ति । तत्र पालाशी जुहूः, आश्वत्थ्युपभृत्, वैकङ्कृती ध्रुवा, अग्निहोत्रहवणी च । अरिलमात्रः खादिरः स्रुवः, अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः, तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः । वारणं बाहुमात्रं मकराकारम्, अग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम् । अरिलमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम् । वारणान्यहोमसंयुक्तानि । तत्रोलूखलं नाभिमात्रम् । मुसलं शिरोमात्रम्। अथवा मुसलोलुखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवत:। तथा-खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः । यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ ॥ शूर्पं वैणवमेव वा ऐषीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम् । प्रादेशमात्री वारणी शम्या । कृष्णाजिनमखण्डम् । दुषदुपले अश्ममये । वारणीं २४ हस्तमात्रीं, २२ अरिलमात्रीं वा

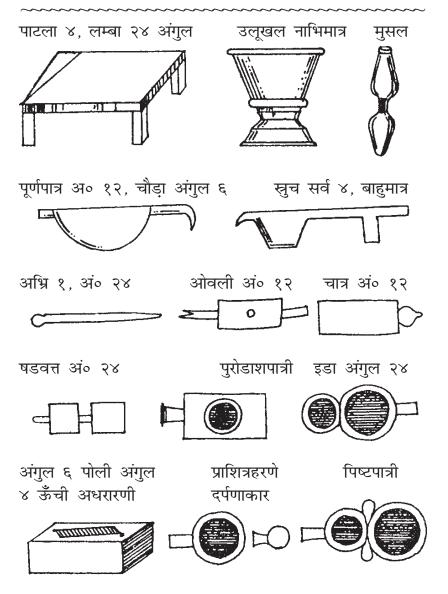
खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापात्रीम् ।

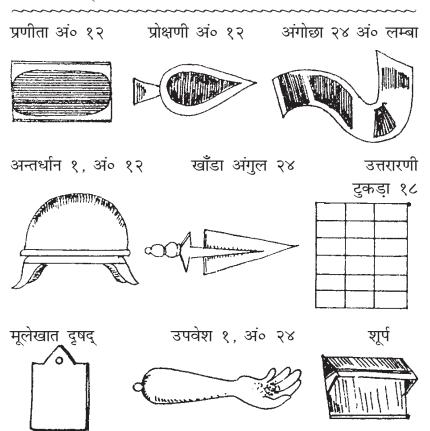
अरिलमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतुपत्न्यासनानि ।

मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम् । प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ। प्रावेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहं तीक्ष्णाग्रं शृतावदानम्। आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे । तयोरेकमीषत्खातमध्यम्। षडङ्गुलं कङ्कतिकाकारमुभयतः खातं षडवत्तम् । द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम् । उपवेशोऽरत्निमात्रः । मुञ्जमयी रज्जुः । खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून् । यजमानपूर्णपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तम् । समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयम् । कौशं बर्हिः । ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि । पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम् । अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः, द्वादशपक्षे पञ्चविंशति:, षट्पक्षे त्रयोदश, सर्वेषु पक्षेषु आदित्येष्टौ धेनुः । वरार्थं चतस्त्रो गावः ।



१६ संस्कारविधि:





सिमध पलाश की १८ हस्त, ३ इध्म, परिधि ३ पलाश की बाहुमात्र। सामिधेनी सिमत् प्रादेशमात्र । समीक्षण लेर ५ । शाटी १ । दृषदुपल १ दीर्घ अंगुल १२ । पृ० १५ उपल अंगुल ६ । नेतु व्याम=हाथ ४, त्रिवृत् तृण वा गोबाल का ।

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तः-'ओमावसोः सदने सीद'।

इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करे।

ऋत्विगुक्तिः-'ओं सीदामि'।

ऐसा कहके जो उस के लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे।

यजमानोक्तः-'अहमद्योक्तकर्मकर्मकरणाय भवन्तं वृणे'। ऋत्विगुक्तिः-'वृतोऽस्मि'।

ऋत्विजों के लक्षण—अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले, वेदवित् एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें।

जो एक हो तो उस का पुरोहित, और जो दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और ३ तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष, और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा ।

इन का आसन वेदी के चारों ओर, अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिणमुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख, और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिए और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख, अथवा दक्षिण में आसन पर बैठके उत्तराभिमुख रहे। इन ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें। और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें।

और अपने-अपने जलपात्र से सब जने, जो कि यज्ञ करने को बैठे हों, वे इन मन्त्रों से तीन-तीन आचमन करें, अर्थात् एक-एक से एक-एक वार आचमन करें । वे मन्त्र ये हैं—

ओम् अमृतोपस्तरणमिस स्वाहा ॥१॥ इस से एक । ओम् अमृतापिधानमिस स्वाहा ॥२॥ इस से दूसरा ।

ओं सत्यं यशः श्रीमीय श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥ इस से तीसरा आचमन करके, तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल करके अङ्गों का स्पर्श करें—

आं वाङ्म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख ।
नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र ।
ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आँखें ।
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ इस मन्त्र से दोनों कान ।
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु ।
ओम् ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ॥६॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और
ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥
इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल-स्पर्श करके मार्जन करना । पूर्वोक्त

समिधाचयन वेदी में करें। पुन:-

ओं भूर्भुवः स्वः ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला, उस से कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर, उस में छोटी-छोटी लकड़ी लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओं भूर्भुवः स्वॢद्यौरिव भूम्ना पृ<u>ष्</u>यिवीव व<u>रि</u>म्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठुेऽग्निमेन्नादम्नाद्यायादधे ॥ –यजुः अ०३। मं०५॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, अगला मन्त्र पढ़के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे—

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृ<u>हि</u> त्विमिष्टापूर्ते सःसृजेथाम्यं च । अस्मिन्त्मधस्थेऽअध्युत्तर<u>िस्म</u>न् विश्वे देवा यजीमानश्च सीदत ॥

–यजुः अ० १५। मं० ५४॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे, तब चन्दन की अथवा ऊपरिलिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा, उन में से एक-एक निकाल नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं—

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्नह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥१॥ –इस मन्त्र से एक

ओं सुमिधािगंन दुंवस्यत घृतैबोंधयतातिथिम् । आस्मिन् हृव्या जुहोतन् स्वाहां ॥ इदमग्नये इदं न मम ॥२॥ –इस से, और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥३॥ –इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों से दूसरी ।

ओं तन्त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदं न मम ॥४॥ –यजुः अ० ३। मं० १, २, ३॥ इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन मन्त्रों से सिमदाधान करके होम का शाकल्य, जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ-पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें। पश्चात् उपरिलिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान, पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर पात्रों में रखा हो, उसमें से कम से कम ६ मासा भर घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवें, यही आहुति का प्रमाण है।

उस घृत में से चमसा कि जिस में छ: मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भरके नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देनी—

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥५॥

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि और अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे । उसके ये मन्त्र हैं—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पूर्व । ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस से पश्चिम । ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इस से उत्तर । और— ओं देवे सवितः प्रस्व यृज्ञं प्रस्व यृज्ञपितिं भगाय । दिव्योगिन्धर्वः केतृपूः केतंनः पुनातु वाचस्पति्वांचेनः स्वदतु ॥ —यज्ञः अ० ३०। मं० १

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे।

इसके पश्चात् सामान्यहोमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें। इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं, उन में से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति, और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उस का नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं। और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं, उन का नाम "आज्यभागाहुति" कहते हैं। सो घृतपात्र में से खुवा को भर अंगूठा, मध्यमा, अनामिका से खुवा को पकड़के—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में । ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदं न मम ॥ इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी । तत्पश्चात्—

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये इदन्न मम ।। ओम् इन्द्राय स्वाहा ।। इदिमन्द्राय इदन्न मम ।। इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी । उसके पश्चात्=चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके, जब प्रधान होम अर्थात् जिस-जिस कर्म में जितना-जितना होम करना हो करके, पश्चात् भी पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें ।

पुन: शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदन्न मम ॥ ओं भूर्भुव: स्वरग्निवाय्वादित्येभ्य: स्वाहा ॥ इदमग्नि-वाय्वादित्येभ्य: इदं न मम ॥

ये चार घो की आहुति देकर स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही है, यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये। उस का मन्त्र—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनिमहाकरम्। अग्निष्ट-त्तिवष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धियत्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते इदं न मम ॥

इस से एक आहुति करके, **प्राजापत्याहुति** करें। नीचे लिखे मन्त्र की मन में बोलके देनी चाहिए—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदं न मम ॥

इस से मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें। परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल, समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं। वे चार मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस् आ सुवोर्ज़िमषं च नः । <u>आ</u>रे बांधस्व दुच्छुनां स्वाहां ॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋ<u>षिः</u> पर्वमानः पाञ्चंजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महाग्यं स्वाहां ॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥२॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पर्वस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दर्धद्वियं मिष्य पोषं स्वाहां ॥ इदमग्नये पर्वमानाय इदन्न मम ॥३॥ –ऋ० मं० ९। स० ६६। मं० १९-२१॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जाता<u>नि</u> प<u>रि</u> ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम् पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥४॥ —ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

इन से घृत की ४ चार आहुति करके ''अष्टाज्याहुति'' के निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल-कार्यों में ८ आठ आहुति देवें, परन्तु किस-किस संस्कार में कहां-कहां देनी चाहियें, यह विशेष बात उस-उस संस्कार में लिखेंगे। वे आठ आहुति-मन्त्र ये हैं—

ओं त्वं नो अग्ने वर्रुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽवं यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो विह्नतमः शोश्चानो विश्वा द्वेषां<u>सि</u> प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहां॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदं न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽव्मो भेवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वर्रुणं रर्राणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदं न मम ॥२॥

-ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

ओम् इमं में वरुण श्रुधी हर्वमुद्या चे मृळय । त्वामेवस्युराचेके स्वाहां ॥ इदं वरुणाय इदं न मम ॥३॥ –ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९॥

ओं तत्त्वा या<u>मि</u> ब्रह्मणा वन्दमान्स्तदा शास्ति यजमानो ह्विभिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युर्रुशंस मा न् आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदं न मम ॥४॥ —ऋ० मं० १।सू० २४।मं० ११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वक्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वक्केभ्यः इदं न मम ॥५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनिभशस्तिपाश्च सत्यिमत्त्वमयाऽसि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजः स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे इदं न मम ॥६॥ ओम् उदुंत्तमं वर्रुण् पार्शमस्मदवर्धमं वि मध्यमं श्रेथाय। अथा व्यमदित्य व्रते तवानांगसो अदितये स्याम् स्वाहां ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च इदं न मम ॥७॥

-ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १५॥

ओं भर्वतन्तः समेनसौ सचेतसावरेपसौ । मा युज्ञः हिर्सिष्टं मा युज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्याम् इदं न मम ॥८॥ –यजुः अ० ५। मं० ३॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मन्दमित काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है। अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें, और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावें।

पुन: निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करें। स्नुवा को घृत से भरके— ओं सर्व वै पूर्णः स्वाहा ॥

इस मन्त्र से एक आहुित देवें। ऐसे दूसरी और तीसरी आहुित देके, जिस को दक्षिणा देनी हो देवें, वा जिस को जिमाना हो जिमा, दक्षिणा देके सब को विदाकर स्त्रीपुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीमके पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्त का भोजन करें।

मङ्गलकार्य

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास-संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें । वे मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः । कंयां निष्चित्रं आ भुवदूतीं सदावृधेः संखां। कंयां शंचिष्ठया वृतां ॥१॥

ओं भूर्भु<u>वः</u> स्वः । कंस्त्वां सैत्यों मदाँ नां मं १ हिष्ठो मत्से दंन्थसंः। दृढां चिदारोजे वसुं ॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अभी षु णैः संखीनामविर्ता जिर्रेर्तॄणीम्। शौर्तं भवास्यूर्तये ॥३॥

महावामदेव्यम्

काँऽ५यों । नश्चाँ३ यित्राँ३ ऑभुवात् । ऊं । तीं संदाँवृधेः । सं खा । औं३ होँहाँयि । कया२३ शंचायि । ष्ठंयौँहो३। हुंम्मा२। वाऽ२र्तो३ऽ५हाँयि ॥(१)॥

काँऽ५स्त्वों । सँत्यो३माँ३दाँनाम् । मां । हिष्ठों मांत्सादेन्ध । सा औ३हों होयि । दृंढा२३ चिदां । रुँजौंहो३। हुंम्मां२ । वाऽ३सो ३ ऽ ५ होयि ॥ (२)॥

औऽ५भीं। षुँणा३: साँ३खींनांम् । आं । विंता जरायि तॄँ । णाम् । औ२३ हों हायि । शंता२३म्भवां । सिँयौहों३ हुंम्मां२ । तांऽ२ यो३ऽ५हांयि ॥ (३)॥

—साम॰ उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं॰ ३ । मं॰ १, २, ३।। यह महावामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्रीपुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपात रहित संन्यासी, जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्तनेवाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें । पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों, उन को भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें।

अथवा जो संस्कार-क्रिया को देखना चाहें, वे पृथक्-पृथक् मौन करके बैठे रहें, कोई बातचीत हल्ला-गुल्ला न करने पावें। सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें। विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म करानेवाले शान्ति धीरज और विचारपूर्वक क्रम से कर्म करें और करावें।

यह सामान्यविधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है।।

॥ इति सामान्यप्रकरणम् ॥